सुमन
ओ३म्
10.2
प्रभु शरण में बैठा भक्त, विनय कर रहा है भक्त॥
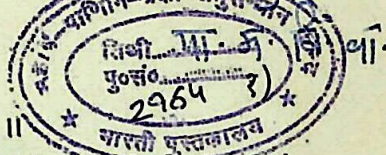
॥ ओ३म् ॥

'असतो मा सद्गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमय-मृत्योर्माऽमृतं गमय'

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का पच्चीसवाँ पुष्प"

विनय सुमन भाग-१

लेखक—प्रो० रामप्रसाद वेदालङ्कार, वेदरत्न,

आचार्य एवं उपकुलपति (Pro-Vice-Chancellor)

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार (१९८१) से सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा-"संघड़ विद्यासभा ट्रस्ट, जयपुर"

आर्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में सम्मानित एवं पुरस्कृत (१९८३ में) द्वारा महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह समिति अजमेर

"वेदरत्न"—मानद उपाधि (१९८४ में) द्वारा-विश्व वेद परिषद्

पता:— रामप्रसाद वेदालङ्कार, वेदरत्न

पिन-२४९४०७, [फोन:- १६९४ हरिद्वार]

वेद सदन, आर्य नगर, ज्वालापुर जि०—सहारनपुर, (उ०प्र०)

प्रकाशक— श्रद्धा साहित्य प्रकाशन

प्र० सं० ४००० तृ० सं० ४००० सम्वत् २०४४

द्वि० सं० ४००० दयानन्दाब्द-१६३ अप्रैल १९८७

विषय सूची

मूल्य—"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" से सरल सुबोध रूप में प्रकाशित होने वाला वैदिक साहित्य दानी महानुभावों के दान से प्रकाशित होता है और सुपात्रों को प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना ही इसका मूल्य है।

१- आप का दान "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" का ज्ञान मूल्य-पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना ?

२- न्यून से न्यून ५०) रु० तक का दान किसी एक पुस्तक की दान-सूची में प्रकाशित होगा, शेष फटकर रूप में।
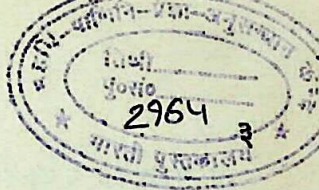
भूमिका

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" का प्रथम पुष्प "प्रार्थना सुमन भाग-१ पुस्तक अप्रैल १९७९ में छपी और व्यास आश्रम हरिद्वार के 'साधना शिविर" की पूर्णाहुति के अवसर पर प्रसाद रूप में बाँटी गई।

इस पुस्तक के वितरण के कुछ ही दिनों के उपरान्त जिज्ञासुओं की जिज्ञासा पर इस का द्वितीय भाग स्वर्गीय पूज्य महात्मा आनन्द भिक्षुजी की पुण्य स्मृति में पूज्य माता सरस्वती जी द्वारा प्रकाशित होकर धर्मप्रेमी महानुभावों के कर कमलों तक पहुँचाया गया। प्रार्थना सुमन, भाग १, भाग २, के प्रथम संस्करण के बाद द्वितीय संस्करण भी छप चुके और बहुत जल्दी ही प्रथम भाग का तृतीय संस्करण छपने वाला है।

कई प्रकार के प्राणी संसार में रहते हैं। अतः सब की अपने ढंग की मांग रहती है। इस पुस्तक को बड़ी श्रद्धा से पढ़ने वाले महानुभावों में से भी कई भाईयों से सुनने को मिला कि "वैसे हमारे लिये तो यह ठीक है पर कई ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास समय तो कम होता है पर वे रुचि बहुत रखते हैं, तो उन के लिये यदि छोटी अर्थात् ढाई-तीन पृष्ठ तक की प्रार्थनायें प्रकाशित हो जायें तो उत्तम रहेगा। और इन को प्रकाशित करने की भी भावना उन्होंने अभिव्यक्त की।
यह सुन कर मैंने चार प्रकार की प्रार्थना पुस्तकें लिखने की अपनी भावना प्रकट की। यह सुन कर वे माहानुभाव बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने विनय सुमन भाग-१ के प्रकाशन के लिये सहयोग प्रदान किया। सो एक-एक करके विनय सुमन के भी ३ भाग छप गए।

इनमें से प्रत्येक के दो दो संस्करण निकल चुके, पर प्रथम, द्वितीय भाग के दोनों संस्करण भी समाप्त प्राय: हैं, अत: प्रथम, द्वितीय भाग का भी कई धर्मप्रेमी सज्जनों के आग्रह पर "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन " की ओर से तृतीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस से अध्यात्म प्रेमी महानुभावों को यदि लाभ पहुँचा तो लेखक एवं प्रकाशन अपनी लेखनी और अर्थ को सार्थक समझेंगे।

समर्पण

जिस परमेश्वर की अपार अनुकम्पा एवं पूजनीय गुरुजनों के उदार हृदय से प्रदान किये हुए ज्ञान एवं आशीर्वाद से मैं यह "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" का सप्तम पुष्प "विनय सुमन" भाग-१ का तृतीय संस्करण आप के कर कमलों तक पहुँचा सका, उन्हीं के पावन चरणों में यह अल्प प्रयास समर्पित है।

विनीत—

राम प्रसाद वेदलंकार वेदरत्न
आचार्य एवं उपकुलपति गुरुकुल
कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

मुद्रक:-
डॉ० यशवर्धन शास्त्री
संचालक
शक्ति प्रेस तथा शक्ति प्रकाशन
ठाकुर संसार सिंह द्वार पो० गुरुकुल काँगड़ी
हरिद्वार—२४९४०४ फोन १२७७
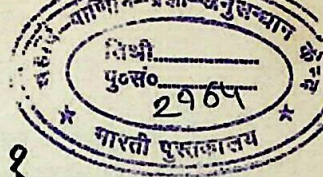
विनय सं० १

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ।। यजु० १-५ ।।

अन्वयः—व्रतपते अग्ने ! व्रतं चरिष्यामि, तत् शकेयम्, मे तत् राध्यताम् । इदम् अहम् अनृतात् सत्यम् उप एमि ।

अन्वयार्थः—(व्रतपते अग्ने !) हे व्रतों के पालन करने वाले एवं व्रतों की रक्षा करने वाले ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (व्रतं चरिष्यामि) में व्रत करूंगा (तत् शकेयम्) उसके पालन करने में मैं समर्थ होऊं (मे तत् राध्यताम्) मेरा वह व्रत सिद्ध होवे, सफल होवे । मेरा वह व्रत (इदम्) यह है कि (अहम् अनृतात् सत्यम् उप एमि) मैं अनृत से-असत्य से अर्थात् झूठ से पृथक् होकर सत्य को प्राप्त करता हूँ वा करना चाहता हूँ ।

(व्रतपते !) हे व्रतों के स्वामी परमेश्वर ! आप व्रतपति हैं, व्रतों का पालन करने वाले हैं । जो आप के व्रत हैं, नियम हैं, व्यवस्थायें हैं, उन का आप भली-भान्ति पालन करते हैं । इस संसार में शाश्वत काल से चली आ रही सभी प्रजाओं को आप अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही जाति, आयु और भोग प्रदान करते हैं । प्रभुवर ! आपकी न्याय व्यवस्था के सम्मुख न कोई छोटा है और न कोई बड़ा है, न कोई बच्चा है और न कोई बूढ़ा है, न कोई गरीब है और न कोई अमीर है, न कोई निर्बल है और न कोई बलवान् है, सभी समान रूप से आप के इस विशाल साम्राज्य में अपने-अपने कृत्यों के अनुरूप ही अच्छा बुरा वा न्यूनाधिक फल पाते रहते हैं ।

हे वृताधिपति प्यारे प्रभो ! आपके न्यायालय में न तो परिचितों की ओर कभी विशेष ध्यान दिया जाता है और न ही अपरिचितों की कभी अवहेलना की जाती है। वहाँ न तो रिशवत चलती है और न ही रिशतेदारी चलती है। आपके दरबार में न तो किसी वकील की आवश्यकता होती है और न ही किसी गवाह की क्योंकि सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञ होने से आप प्रत्येक को भीतर-बाहर से भली भान्ति जानते हैं।

हे परम पिता परमेश्वर ! जैसे आप के अपने वृत हैं, नियम हैं, व्यवस्थायें हैं, जिनका कि आप निश्चल रूप से पालन करते हैं, वैसे ही आपने हमारे लिए भी वृत बनाए हैं, नियम निश्चित किये हैं, व्यवस्थायें बांधी हैं। अब यदि हम श्रद्धा-पूवक उन वृतों का, उन नियमों का, उन विधि-विधानों का पालन करेंगे, तो निश्चित रूप से हम हिंसित नहीं होंगे--पीड़ित नहीं होंगे, वरन् हम हर प्रकार से समुन्नत होंगे, सुखी होंगे, प्रसन्न होंगे।

हे वृतशील ! हे वृतरक्षक ज्ञान प्रकाश के पुञ्ज प्रभो ! इधर जब हम आप वृतपति को देखते हैं और उधर जब आप के उन अनन्य भक्तों--सच्चे सुच्चे साधकों--प्रिय उपासकों को देखते हैं, जो बड़ी लग्न से, बड़ी श्रद्धा से, दृढ़तापूर्वक आप के बनाए हुए वृतों का-'नियमों का निरन्तर पालन करते रहते हैं, भले ही ऐसा करते हुए उन्हें बड़ी से बड़ी हानि भी क्यों न उठानी पड़े, बड़े से बड़े कष्टों का सामना भी क्यों न करना पड़े, यहां तक कि साक्षात् मृत्यु तक का भी आलिङ्गन क्यों न करना पड़े, तो भी वे वृतों से हटते नहीं, नियमों से टलते नहीं।

ऐसी अवस्था में आपको देख-देख कर तथा उन दृढ़वृती महा-पुरुषों को देख-देख कर वा सुन-सुन कर हमारे हृदय में भी उत्साह उत्पन्न होता है कि हम भी वृत करें। और इसी प्रवाह में आकर ही हम कह उठते है कि हम भी वृत करेंगे, वृत का पालन करेंगे। उस वृत का पालन करने में हम समर्थ होवें। प्रभु देव ! आप हमारे उस वृत को सफल और सुफल करें। हमारे उस वृत का उद्देश्य केवल एक ही है और वह यह है कि हम अनृत से पृथक् हटकर सत्य को प्राप्त होवें, अविद्या से पृथक् होकर विद्या विज्ञान को प्राप्त करें, मृत्यु से हट कर अमरता को प्राप्त करें। हे ज्ञानस्वरूप प्रभु देव ! हमारी टेर को आप सुनो, हमारी पुकार को आप सुनो और हर प्रकार से हमें सफल करो।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म्

विनय सं० २

ओ३म उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ।। ऋ० १-४-६ ।।

अन्वयः—दस्म ! अरिः उत नः सुभगान् (वोचेयुः), कृष्टयः वोचेयुः । [वयम्] इन्द्रस्य इत् शर्मणि स्याम ।

अन्वयार्थः—(दस्म !) हे पाप प्रणाशक दर्शनीय देव ! (अरिः उत नः सुभगान् वोचेयु.) शत्रु तक भी हमें सौभाग्यशाली कहें यद्वा हमारे गुणों की चर्चा करें, (कृष्टयः वोचेयुः) सामान्य जन तो कहें ही । परन्तु फिर भी हम (इन्द्रस्य इत् शर्मणि स्याम) तुझ इन्द्र की--तुझ परमेश्वर की ही शरण में-आश्रय में-सुख में वर्तमान रहें ।

(दस्म ! हे पाप प्रणाशक प्रभुवर ! तू हमारे पाप-तापों का उपक्षय करने वाला है, पाप-पीडाओं का विनाश करने वाला है, आधि-व्याधियों को समाप्त करने वाला है, दुर्विचार, दुराचारों को क्षीण करने वाला है, दुर्गुण-दुर्व्यसनों को दूर करने वाला है, इसी से तू 'दस्म' कहाता है--पाप ताप विनाशक कहलाता है, इसी कारण तू दस्म अर्थात् दर्शनीय भी है, प्रापणीय भी है ।

हे दस्म ! हे दर्शनीय देव ! इस संसार में भी यदि कोई हमारे पाप-तापों को हर लेता है, हमारे दुःख-दर्दों को दूर कर देता हैं, हमारे दुर्गुण-दुर्व्यसनों को समाप्न कर देता है, तो ऐसा पाप-ताप विनाशक व्यक्ति हमारे लिए स्नेह ओर सम्मान का, सेवा और सत्कार का, श्रद्धा और शुश्रूषा का पात्र बनकर सब

प्रकार से दर्शनीय हो जाता है. पूजनीय हो जाता है । फिर प्रभु! तू तो हमें सहज स्वभाव से सर्वथा निःस्वार्थ भाव से भी उच्च तम स्तर से जव भीतर-वाहर मे धो रहा है, अन्दर-वाहर से जव पाप-ताप से मुक्तकर रहा है, तो फिर भला तुझ सं वढ़कर हमारे लिए द्रष्टव्य और प्राप्तव्य. दर्शनीय और प्रापणीय और कौन रह जायेगा ? अर्थात कोई नहीं । अतः हे दुःखविनाशक दर्शनीय एवं प्राणनीय प्यारे परमेश्वर ! तेरी अनुपम कृपा से हम इतने पवित्र हो जाएँ, हम इतने ऊँचे उठ जाएँ, हम इतने अच्छे हो जाएँ, हम इतने दिव्य वन जायें, हम इतने महान् वन जायें, हम इतने सुन्दर गुण कर्म और स्वभावों से देदीप्यमान् वन जायें कि (अरिः उत नः सुभगान् वोचेयुः) शत्रु तक भी जो कि हमारे सम्बन्ध में स्नेह और सम्मान सूचक शब्द कहने में अत्यन्त कठोर वा अत्यन्त कंजूस हैं, हमें सु-भग वाले अर्थात् सुन्दर षड्विध ऐश्वर्यों वाले कहें । अर्थात् ऐसे विपरीत जन तक भी हमारी अच्छाईयों को, हमारे सौभाग्यों को कहें, और कहने में सुख अनुभव करें (कृष्टयः वोचेयुः) सामान्य जन तो कहें ही और कहने में सुख अनुभव करें भी ।

हे दर्शनीय दिव्य देव ! हमारी सरलता, हमारी निष्क-पटता, हमारी निश्छलता, हमारी धार्मिकता, हमारा यशः, हमारी कीर्ति, हमारी श्री, हमारी शोभा, हमारी आभा, हमारी प्रभा, हमारा ज्ञान, हमारा ध्यान, हमारा वैराग्य, हमारी श्रद्धा, हमारा विश्वास आदि भग-ऐसे सुभग वन जाएं-ऐश्वर्य ऐसे सुन्दर ऐश्वर्य वन जायें कि शत्रुओं तक के हृदयों में भी वे गढ़ कर रह जाएं, उनके हृदयों तक में अपना स्थान वना कर रह जाएँ और उन को उन सुभगों का, उन अच्छाईयों का,

उन सद्‌गुणों का बखान करने को मुखरित कर डाले, तथा उन को हमारा ऐसा प्रेमी-हमारा ऐसा घनिष्ट बना डालें कि जिस का वर्णन न किया जा सके। सामान्य जन तो हमारी उन अच्छाईयों के, हमारे उन सुभगों के, हमारे उन सुख--सौभाग्यों के बखान करने में मुखरित होंगे ही।

परन्तु हे दस्म ! हे दर्शनीय परमेश्वर ! तेरी कृपा से, तेरे पावन अनुग्रह से इस यश को, इस स्नेह और सम्मान को पाकर भी हम इसमें कहीं डूब न जाएं, इसे पाकर कहीं फूल न जाएं और इसमें विभोर होकर कहीं तुम्हे सर्वथा भूल न जाएँ। अतः.......

हे नाथ ! (इन्द्रस्य इत् शर्मणि स्याम) हम तुझ इन्द्र-तुझ परमेश्वर ही की शरण में--आश्रय में सदा वर्तमान रहें। क्योंकि संसार की शंसा-प्रशंसा पर, संसार के मान-सम्मान पर, संसार के सेवा-सत्कार पर जीना--निर्भर करना तो कोई उत्तम बात नहीं है। वास्तव में जीवन तो वही है जो तेरे पावन संरक्षण में बाते, तेरे पावन चरणों में बीते। संसार के लोगों के मान-सम्मान में और सेवा-सत्कार में जो फूल सकता है, वह अपमान और तिरस्कार में कभी कुम्हला भी तो सकता है, दुःखी और उदास भी तो हो सकता है। इसीलिए हमें तो तेरी ही शरण चाहिये-तेरा ही आश्रय चाहिये, जहाँ सब अवस्थाओं में आनन्द ही आनन्द है। फिर संसार वाले तो केवल हमें अवर ऐश्वर्य दे सकते हैं, केवल संसार में उपलब्ध हो सकने वाला ऐश्वर्य, धन-वैभव, मान-सम्मान, सेवा-सत्कार, श्रद्धा एवं प्यार दे सकते हैं, जबकि जिस तुझ इन्द्र का हमने आश्रय लिया है, जिस तुझ इन्द्र को हम शरण में आए हैं, वह [इदि परमैश्वर्य] तू इन्द्र

हमें अवर अर्थात् साँसरिक ऐश्वर्य के साथ-साथ परमैश्वर्य-परमशान्ति--परमसन्तोष-परमतृप्ति-परमानन्द भी प्रदान कर सकता है, जिसके पा लेने पर फिर हमारे लिए कुछ प्राप्तव्य शेष नहीं रह जाता। इसलिए हम तुझ इन्द्र को परम सहारा-परम आश्रय समझकर तुम्हारा ही आश्रय लेना चाहते हैं। उपनिषद् भी तुझ दिव्य आश्रय की मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हैं—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।

एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।। कठोप० २.१७।।

"यही उत्तम आश्रय है यही महान् आश्रय है। तात्पर्य मह है कि सब से वड़ा यदि कोई सहारा है, सब से परम यदि कोई सहारा है, तो वह केवल मात्र यही है। इस आश्रय को जानकर एवं अपनाकर ही मनुष्य ब्रह्मग्राम में महिमा को प्राप्त कर सकता हैं।"

इसीलिये ही तो हे जगत्सम्राट्, हे हृदयसम्राट् परमेश्वर! हमने तुझ उत्तम आश्रय को ही पकड़ा है—हम ने तुझ परम सहारे को ही पकड़ा है। नाथ! तेरे दर से भला कौन सा ऐसा ऐश्वर्य है, कौन सा ऐसा सुख-सौभाग्य और परम-सौभाग्य है, जो हमें उपलब्ध नहीं हो सकेगा? अर्थात् सर्वविध ऐश्वर्य हमें सहज से ही प्राप्त हो जायेगा। इसी आशा और विश्वास से ही तो हम तेरी शरण में पड़े हुए हैं, तेरे चरणों में ध्यानावस्थित हुए हैं। नाथ! कभी तो सुनेंगे ही आप हमारी पुकार को, कभी तो सुनेंगे ही नाथ आप हमारी पुकार को और निहाल करेंगे आप हमारी कुटिया को—

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म् ।।

विनय सं० ३

ओ३म् उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।

नमो भरन्त एमसि ।।ऋ० १.१.७ ।।

अन्वय:—अग्ने!वयं दिवे दिवे दोषावस्त: धिया नम: भरन्त: त्वा उप एमसि ।

अन्वयार्थ:—(अग्ने !)हे ज्ञान प्रकाश के पुञ्ज परमेश्वर ! (वयं दिवे दिवे दोषावस्त:) हम उपासक प्रतिदिन सायं-प्रात: (धिया नम: भरन्त:) बुद्धि एवं आचरण पूर्वक अपने में नमन नम्रता-कृतज्ञता को धारण करते हुए (त्वा उप-एमसि) तेरे समीप आ रहे हैं, तेरी शरण में आ रहे हैं ।

हे प्रभो ! आप अग्नि के समान प्रकाशमान हैं। इसलिए जो भी आप की शरण में आ जाता है उसे भी आप अपने ज्ञान प्रकाश से प्रकाशमान कर देते हैं। हे अग्निसम दिव्यदेव ! आप अग्रणी हैं। इसलिए आप को हृदय में जो अपना अग्रणी-अगुआ-नेता मान लेता है, उसके आप अगुआ बनकर उसको सब प्रकार से आप आगे ही आगे ले चलते हैं, जिस के परिणाम स्वरूप वह उपासक भी आपका सच्चा अनुयायी भक्त बनकर सफलता पूर्वक अन्यों का नेतृत्व करने में समर्थ बन जाता है ।

प्रभुवर ! आप अग्नि सम पवित्र हैं । अत: अपनी शरण में आए हुये को भी आप पवित्र कर देते हैं। आप तेजस्वी हो । इसलिये जो आपकी शरण में आ जाता है उसे भी आप तेजस्वी बना देते हो। इससे फिर उसे पाप-ताप छू नहीं पाते ।

हे अग्नि देव ! हे प्रकाशस्वरूप प्यारे प्रभुवर ! हम उपासक दिनो-दिन आप के समीप आ रहे हैं—आपके सानिद्धय में आ रहे हैं। हम दिन प्रतिदिन ही नहीं, अपितु प्रतिदिन में भी प्रति-सायं तथा प्रति प्रातः आपके सन्निकट आ रहे हैं।

हे जगदीश! हम सोचते हैं कि हमारे जीवन में कोई ऐसा दिवस न रहे, दिवस में भी कोई ऐसी प्रभात न रहे, कोई ऐसी शाम न रहे जिस में कि हम आप से दूर पड़े हुए हों। प्रतिदिन प्रातः-सायं हम आप की शरण में ही दौड़े चले आ रहे हों। प्यारे प्रभो ! हम श्रद्धा भक्ति एवं उत्साह से भर-भर कर सर्वविध विघ्न वाधाओं को पैरों तले रोंधते हुए तुम्हारी ओर अवाध गति से चले आ रहे हों।

हे प्यारे एवं सब जग से न्यारे परमात्मन्! हम प्रतिदिन प्रातः सायं धिया-ज्ञान एवं कर्मपूर्वक-बुद्धि एवं आचरण पूर्वक आपकी ओर सोत्साह आ रहे हैं। जिस वात को हमारी बुद्धि स्वीकार करती है, हम उसका आचरण करते हुए आपके पावन स्नेह एवं आशीर्वाद के सच्चे पात्र वनने को चले आ रहे हैं। नाथ! आप की कृपा से यह गति-प्रगति निरन्तर चलती रहे, ताकि हम आप तक पहुँच सकने में समर्थ हो सकें।

हे परमपिता परमेश्वर! आप की शरण में आते हुए हम आप के लिए क्या भेंट लेकर आयें? वहुत कुछ सोचने विचारने पर भी हमें कोई ऐसी वस्तु दिखाई नहीं दी जिसे कि हम आप के चरणों में लाकर श्रद्धापूर्वक धर सकें। यह धनैश्वर्य, यह वस्त्राभूषण, यह फल-फूल, यह तन मन आदि सभी कुछ आपका ही तो है, इसलिए हम इसे क्या भेंट में धरें।

इस प्रकार बहुत कुछ सोचने विचारने और देखने भलाने पर भी हमें कोई ऐसी वस्तु नहीं दिखाई दी जो कि हम आप की शरण में लाकर भेंट स्वरूप धर सकें। जो कुछ दीखा, सो सब कुछ आप का ही दीखा, और वह भी आपने हम पर अनुग्रह करके हमारे सुख-सौभाग्य के लिए हमें प्रदान किया हुआ है।

हे दिव्य देव ! आपके इन अनुपम अनुग्रहों को, दिव्य उपकारों को-दिव्य देनों को देख-देख कर सुन-सुन कर हमारा सिर आपकी शरण में ऐसा झुक गया कि फिर उठाये न उठ सका। प्रभुवर ! बस हम इस नमन को, अर्थात् कृतज्ञता पूर्वक सहज स्वभाव से हुए इस नमन को अपने में धारण करते हुए आप की भेंट स्वरूप लाए हैं। अतः हे पावन परमेश्वर ! आप इन अपने कृतज्ञ भाव से ओत-प्रोत हम उपासकों की श्रद्धा भक्ति एवं उत्साह पूर्वक लाई हुई इस भेंट को स्वीकार करो और हमरा सब प्रकार से कल्याण करो।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म् ॥

विनय सं० ४

मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।

मान्तः स्थुर्नो अरातयः ।।ऋ १०.५७.१।।अथर्व १३.१.५९।।

अन्वयः—इन्द्र! वयं पथः मा प्रगाम सोमिनः [वयम्] यज्ञात् मा [प्रगाम] । अरातयः न अन्तः मा स्थुः ।

अन्वयार्थः— (इन्द्र !) हे परमैश्वर्यवान् प्रभो ! वयं पथः मा प्रगाम)हम सत्पथ से कभी विचलित न हों। हे परमेश्वर ! (सोमिनः यज्ञात् मा प्रगाम) ऐश्वर्यशाली होकर हम यज्ञादि शुभ कर्मों से कभी विचलित न हों (अरातयः नः अन्तः मा स्थुः) यज्ञादि शुभ कर्मों में बाधा पहुँचाने वाले अराति भाव-अदान भाव-स्वार्थ भाव या काम क्रोध आदि शत्रु हमारे भीतर न रहें ।

हे इन्द्र ! हे ऐश्वर्यों के भण्डार परमेश्वर ! इसमें कोई सन्देह नहीं, कि तू इन्द्र है, ऐश्वर्यों का स्वामी है, ऐश्वर्यों का ही नहीं परमैश्वर्यों का भी तू स्वामी है। संसार के सर्वविध ऐश्वर्य तुझ से ही प्रवाहित होते रहते हैं । सांसारिक अवर एश्वर्य ही नहीं वरन् परमैश्वर्य के-आध्यात्मिक अनुपम ऐश्वर्य के-परमानन्द के दिव्य स्रोत भी तो तुझ से ही प्रवाहित होते रहते हैं । प्रभुवर! यह जानते हुए भी हम यहाँ तुझ से ऐश्वर्यों की-धन वैभवों की प्रार्थना नहीं करते, सुख सौभाग्यों की अभ्यर्थना नहीं करते। हे जगदीश्वर ! हम तो यहाँ तुझ से केवल यही विनय करते हैं कि (वयं पथः मा प्रगाम) हम पथ

से-सुपथ से कभी विचलित न हों, हम सन्मार्ग से-राहे रास्त से कभी भटक न जायें।

हे इन्द्र ! हे जगदीश! तेरी पावन छत्र छाया में वर्तमान रहते हुए नित्य प्रति सत्पथ-सन्मार्ग पर चलते हुए जो भी हमें धन-वैभव, सुख-सौभाग्य प्राप्त होगा, वही हमारे लिए वास्तविक ऐश्वर्य होगा, वही वास्तव में हमारे लिए सच्चा धन-वैभव होगा।

सत्पथ से उपलब्ध हुए उस ऐश्वर्य से (सोमिनः) ऐश्वर्यशाली बने हुए हम (यज्ञात् मा प्रगाम) यज्ञ मार्ग से विचलित न होवें। अर्थात् हम तेरी पावन छत्र-छाया में जहाँ सत्पथ पर चलते हुए ऐश्वर्य प्राप्त करें वहाँ उस ऐश्वर्य को पाकर सत्पथ पर चलते हुए ही अर्थात् यज्ञ आदि शुभ कर्मों को करते हुए ही उसका व्यय करें।

हम सत्पथ से उपलब्ध उस धन-वैभव का ऐसे ढंग से उगयोग करें कि जिस से हमारा ब्रह्म यज्ञ, सम्पन्न होता रहे-अर्थात् हमारी वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वाध्याय में तथा तुझ ब्रह्म मैं निरन्तर श्रद्धा बढ़ती रहे, विश्वास बढ़ता रहे। उस धन का हम 'देव यज्ञ' में ऐसे ढंग से व्यय करें कि जिस से जहाँ वायुमण्डल की शुद्धि होती रहे वहाँ यज्ञ में वेद मंत्रों के उच्चारण और मनन चिन्तन, तथा निदिध्यासन आदि से वातावरण की पवित्रता के साथ-साथ हमारे आहार, व्यवहार और आचारों में भी दिव्यता आती रहे। 'वलिवैश्वदेव' यज्ञ में अर्थ का ऐसा उपयोग करते रहें कि जिससे गौ, कुक्कुर, काक आदि भी भूख प्यास से विह्वल होकर यमराज के अतिथि न वन जायें। ऐसी विधि से 'पितृ यज्ञ' में धन को खर्च करते रहें

कि हमारे माता-पिता, दादा आदि आदि पितृ जन सदा अन्न-पान, वस्त्र, सेवा-शुश्रूषा आदि से तृप्त होते रहें। ऐसे ढंग से 'अतिथ यज्ञ' में धन का उपयोग करें कि ब्रह्मचारी, विद्वान् ज्ञानी, तपस्वी, साधु-सन्यासी आदि कभी भोजन आच्छादन आदि के अभाव में प्रचार एवं परोपकार आदि कर्मों से उपरत न हो जायें।

हे इन्द्र ! इसप्रकार जहाँ तेरी कृपा से सत्पथ पर चलते हुए जिस धन-वैभव से हम धनी मानी बनें वहाँ उस को सत्पथ पर-ऋतपथ पर-यज्ञमय पथ पर उदार भाव से व्यय करके भी हम यशस्वी बनें।

प्रभुवर ! हमारा सत्पथ से पुरुषार्थपूर्वक उपलब्ध हुआ-हुआ धन-वैभव सदा देवों की पूजा में—सेवा शुश्रूषा में लगे। अपने समान स्थिति वालों पर भी कभी कष्ट-आपत्ति आ जाए तो उनकी सहायता सहयोग में लगे। हम से जो निम्न स्थिति वाले दीन हीन जन हों, उनकी सुख सुविधा में लगे।

हे परमेश्वर ! ऐसे यज्ञ मय प्रसंगों में परोपकारमय कर्मों में- कल्याणमय शुभ कृत्यों में, दीन हीनों की सेवा सहायता-रूप कार्यों में (अरातयः नः अन्तः मा स्थुः) बाधा डलने वाले अराति भाव-अदान भाव-स्वार्थ भाव हमारे भीतर कभी न रहें। क्योंकि ये अराति भाव-ये अदान भाव-ये स्वार्थ भाव हमें अपने तन मन धन रूप ऐश्वर्य के सदुयोग के सौभाग्यमय अवसरों से वञ्चित कर देंगे, आयु अनुभव तथा ज्ञान वृद्ध दिव्य महाँ-पुरुषों के मान-सम्मान और सेवा-शुश्रूषा से हमें वंचित कर देंगे, समय आने पर बन्धु-बान्धव एवं सखाओं की सहायता सह-योग रूप सुकर्मों से हमें वञ्चित कर देंगे, दीन-दुखियों, पीडितों, असहायों और अनाथों के पेट की आग बुझाने से, उनकी नग्न

देहों को ढक कर उनकी लाज वचाने से उनको ओषधोपचार द्वारा नोरोग करने से हमें वञ्चित कर देंगे, उन को धैर्य और सान्त्वना देकर उन के आँसू पोंछने और उनके भीतर के घावों पर मर्हम लगाने रूप सुकर्मों से हमें वञ्चित कर देंगे। इतना ही नहीं इस के परिणामस्वरूप हमारे ये अपने ही अराति-भाव-अदानभाव स्वार्थभाव हमें उन आयु, अनुभव एवं ज्ञान-वृद्ध ज्ञानी तपस्वी संन्यासी योगी महानुभावों के पावन स्नेह एवं आशोर्वाद से वंचित कर देंगे, प्रिय मित्रों के निश्छल स्नेह और सहयोग एवं शुभकामनाओं से हमें वञ्चित कर देंगे। तथा दीन-हीन अनाथ एवं पीड़ित मानवों के स्नेह, सम्मान, श्रद्धा और शुभकामनाओं, धन्यवादों तथा स धुवादों से हमें वञिचत कर देंगे। अत:

हे इन्द्र ! हे जगदीश ! हे हृदय सम्राट् प्रभुदेव ! हमें सत्पथ पर चलाना और सत्पथ पर चलाकर ऐसा पावन ऐश्वर्य प्राप्त कराना जिससे कि हम ऐश्वर्यशाली वन कर कभी स्वार्थी न वन जायें, स्वार्थी वन कर कहीं स्वयं ही खाने-पीने और मौज उड़ाने में न लग जायें, तथा भोगविलासों में न पड़ जायें, वरन् तेरी कृपा से तेरे उस ऐश्वर्य को प्राप्त कर हम यज्ञ आदि शुभ कर्मों का आचरण करें। यज्ञ आदि परोप-कारमय शुभ कर्मों को सम्पन्न करने पर जो यज्ञ शेष रह जाय, उस यज्ञ शेष' का ही हम तेरा धन्यवाद करते हुये उप-भोग करें—तेरे प्रति कृतज्ञतावश झूम-झूम कर सेवन करें। यही है अभ्यर्थना, यही है प्रार्थना, यही है याचना, स्वीकार करो और हमारा सर्वविध कल्याण करो।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म् ॥

विनय सं० ५

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
त्वामस्युराचके ।। यजु० २०-१ ।।

अन्वयः—वरुण ! मे इमं हवं श्रुधि, अद्य च मृडय । अवस्युः त्वाम् आचके ।

अन्वयार्थः—(वरुण !) हे वरुण ! हे वरणीय परमेश्वर ! (मे इमं हवं श्रुधि) तू मेरी इस पुकार को सुन, (अद्य च मृडय) और मेरी इस पुकार को सुन कर तू आज ही मुझको सुखी कर (अवस्युः त्वाम् आचके[1]) हृदय से तुम्हारी रक्षा का इच्छुक मैं तुम्हें पुकारता हूँ ।

(वरुण !) हे पापों से पृथक् करने वाले, निष्पाप बन जाने पर आशीर्वाद देने वाले तथा समर्पित होकर उपासना करने वाले साधक को तृप्त करने वाले वरणीय वरुणदेव ! (मे इमं हवं श्रुधि) तू मेरी इस पुकार को सुन, मेरी इस प्रार्थना को सुन, मेरी इस याचना को सुन, (च अद्य मृडय) और मुझे आज ही सुखी कर, मुझे आज ही दुःखों से दूर कर के हर्षित कर--प्रसन्न कर । मैं तुझ वरणीय वरुणदेव की शरण में आकर (अवस्युः त्वाम् आचके) हृदय से तेरा सरक्षण

१- 'आचके--आचक इति कान्तिकर्मा ।।निघं० २-६ ।। कामये ।

२- वरुणः-वारयति दोषादिति वरुणः । वणोति-अच्छादयतीति वरुणः । व्रियते इति वरुणः ।

चाहता हुआ यह कामना कर रहा हूँ, यह प्रार्थना कर रहा हूँ।

हे वरुण ! हे वरणीय परमेश्वर ! मैं तुझ से अभ्यर्थना कर रहा हूँ, मैं तुझसे विनय कर रहा हूँ। हे प्रभुवर ! मैं आज से ही नहीं, सुदीर्घ काल से तुझे पुकार रहा हूँ, चिरकाल से तुझ से याचना कर रहा हूँ। हे दयानिधे ! पुकारते-पुकारते, प्रार्थना करते-करते, याचना करते-करते मैं थक गया--हार गया, तेरी राह तकते-तकते, तेरी राह देखते-देखते अब तो यह शरीर भी लड़खड़ा गया, मन भी डगमगा गया। इस प्रकार सब तरह से मैं थक गया, हार गया, अधीर हो गया, परन्तु फिर भी हे नाथ ! न जाने कैसे यह चाह बनी हुई है, यह भीतर की टीस बनी हुई है कि तू प्रियतम प्रभु किसी प्रकार से मेरी इस पुकार को सुन ले, किसी प्रकार से मेरी प्रार्थना को सुन ले, किसी प्रकार से मेरी विनति को सुनले, किसी प्रकार से मेरी मांग को मान ले, और मुझ दुःखी को सुखी कर दे, मुझ अशान्त को शाँत कर दे, मुझ अतृप्त को तृप्त कर दे।

हे वरुण ! अब मेरे भीतर से आवाज आई और मैं उस से भाँप गया, कि तू क्यों मेरी टेर सुनता नहीं, तू क्यों कृपालु होकर मुझे निहारता नहीं, तू क्यों मेरी ओर से उपेक्षित है, इसलिये ही तो न, कि मैं ने तुझ वरुण देव की प्रेरणाओं के अनुसार एवं तुझ वरणीय प्रभुवर की वेदाज्ञाओं के अनुरूप अपने को धोया नहीं, अपने भीतर बाहर के मलों को अपने से पृथक् कर अपने को साफ-सुथरा शुद्ध-पवित्र बनाया नहीं, अपने को दुर्गुण-दुर्व्यसनों से हटाया नहीं, अपने को तप की

भट्टी में झोंक कर खरा सोना वा कुन्दन वनाया नहीं, अर्थात् अपने को निखारा नहीं। अब जब मैंने ऐसा किया ही नहीं तो भला तू भी मेरी पुकार कैसे सुने, मेरी प्रार्थना कैसे सुने, मेरी ओर स्नेह एवं कृपा से कैसे निहारे और किस विध मुझ दुःखी को सुखी करे, किस प्रकार मुझ अशान्त को शान्त करे, किस तरह मुझ अतृप्त को तृप्त करे ?

हे वरण करने के योग्य पावन परमेश्वर ! अब मैंने तेरी प्रेरणानुसार अपने को धोना आरम्भ कर दिया है, अपने को बाहर-भीतर से साफ-सुथरा, शुद्ध-पवित्र बनाने का हार्दिक प्रयास प्रारम्भ कर दिया है। अब मैंने तप की भट्टी में अपने को झोंक कर कुन्दन बनाना आरम्भ कर दिया है। अब मुझे यह भी अनुभव हो रहा है कि सच कहा था ऋषिवर दयानन्द ने कि—"प्रार्थना उस की सुनी जाती है, पुकार उस की सुनी जाती है, टेर उसकी सुनी जाती है, जो प्रार्थना वा पुकार से पूर्व उस सम्बन्ध में पूर्ण पुरुषार्थ कर के पसीना बहा लेता है।" सो उस ऋषिवर के अनुभव के आधार पर और तेरी दिव्य प्रेरणा एवं वेदाज्ञा के आधार पर जब मैंने कुछ करना आरम्भ कर दिया तो अब मुझे वास्तव में कुछ सुख भी मिलने लगा है, कुछ शान्ति भी मिलने लगी है। नाथ ! अब तो मुझमें तेरे प्रति कुछ ऐसा आकर्षण सा होने लगा है कि जी करता है, सर्वतोभावेन तेरा वरण कर लूँ, सब ओर से तुझ को अपना ही लूँ, सब प्रकार से तुझ में खो ही जाऊँ। इसीलिये मैं हृदय से तेरा वरण कर (त्वाम् अवस्युः आचके) तेरी शरण में आकर तेरे पूर्ण संरक्षण की कामनाओं से ओतप्रोत हुआ-हुआ प्रार्थना कर रहा हूँ, तुझ को पुकार रहा

हूँ। न जाने इस से पूर्व मैंने अपने को सुखी, शान्त एवं तृप्त करने के लिये किस-किस से प्रार्थना की, पुकार की, किस-किस के द्वार पर अलख जगाई, पर मैं तब भी सुखी न हुआ, शान्त न हुआ, तृप्त न हुआ। मैंने अपने पूर्ण संरक्षण के लिये न जाने किस-किस का वरण किया, न जाने किस-किस को स्वामी बनाया, न जाने किस-किस के प्रति आत्म-समपण किया, पर नाथ! फिर भी मेरा पूर्ण रूप से संरक्षण हुआ नहीं, मैं पूर्ण रूप से तृप्त हुआ नहीं, मैं पूण रूप से निहाल हुआ नहीं। पर हे नाथों के नाथ! अब मुझे विश्वास है कि जिस वरणीय प्रभु का मैंने वरण किया है, और वरण करके उसके दिव्य द्वार पर अलख जगाई है, वह मुझे सब प्रकार से तृप्त कर देगा, निहाल कर देगा। इस द्वार पर आकर अब मुझे बिल्कुल भी निराश नहीं होना पड़ेगा, इस आशा पर मैंने यही अलख जगाई है। अतः प्रभुवर! कृपा करो, अनुकम्पा करो और इस शरणागत को सब प्रकार से निहाल करो।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म्॥

विनय सं० ६

ओ३म् यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः ।। ऋ० १.१.६ ।।

अन्वयः-अङ्ग अग्ने ! त्वं दाशुषे यत् भद्रं करिष्यसि, अङ्गिरः ! तत् तव सत्यम् इत् ।

अन्वयार्थः-(अङ्ग अग्ने !) हे प्रिय प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (त्वं 1दाशुषे यत् 2भद्र 3करिष्यसि) तुम दानशील आत्म-समर्पण करने वाले उपासक के लिए जो भद्र करते हो, कल्याण करते हो(4अङ्गिरः!) हे ब्रह्माण्ड के प्राण स्वरूप यद्वा शरीर स्थिति के हेतु जीवन सार प्रभो ! (तत् तव सत्यम् इत) वह तुम्हारा नियम सत्य ही है। वह तुम्हारा विधान अटल ही है।

(अङ्ग अग्ने !) हे प्यारे और सब जग से न्यारे ज्ञान के अनुपम स्रोत विभो ! तू अङ्ग है, अङ्ग के तुल्य प्रिय है। यह हम पढ़ते हैं, यह हम सुनते हैं, परन्तु इसकी हमें सजग अनु-भूति नहीं है। क्योंकि जैसे हमारे शरीर का कोई अङ्ग हम से पृथक् किया जाता है तो हम तड़फड़ाते हैं। अर्थात् महत् कष्ट का अनुभव करते हैं, परन्तु ऐसी स्थिति का अनुभव हमें

---

१. दाशुषे-दाशृ दाने क्वसु-दाश्वान्, दाशुष चतुर्थी एक वचन।
२. भद्रम्-'भदि कल्याणे सुखे च'+रक्-भद्रम्।
३. करिष्यसि-करोषि (लट् के अर्थ में लृट् लकार हुआ)।
४. अङ्गिरः ! अङ्गिराः का। सम्बोधन ब्रह्माण्डस्याङ्गानां रसोऽङ्गिराः तत्सम्बुद्धौ यद्वा अङ्गानि शरीरम् तस्य स्थिति-हेतो रसस्यकर्त्ता अङ्गिराः तत्सम्बुद्धौ।

आज आप के वियोग में नहीं होता। प्रभुवर जैसे शरीर का कोई भाग मारा जाता है, उसके प्रति रक्त सञ्चार आदि का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है तो तब उसके पार्थक्य पर भी हमें कष्ट की अनुभूति-कष्ट की संवेदना नहीं होती, ठीक वैसे ही हमारी शक्तियों का प्रवाह तुम्हारी ओर बन्द हो जाने से हमें तुझ परम अङ्गरूप प्यारे प्रभु से वियोग की, पार्थक्य की प्रतीति नहीं होती।

हे प्यारे प्रभो! हमें ऐसी सद्‌वुद्धि दो, ऐसी सत्प्रेरणा दो, ऐसी रुचि दो कि पुनः हमारे "शरीर के उस मृत भाग में रक्त सञ्चार के समान" श्रद्धा भक्ति पूर्वक वृत्ति प्रवाह तुझ परम अङ्ग की ओर सहज स्वभाव से हो ताकि हम 'अङ्ग भङ्ग' के रोग से मुक्त होकर तुझ परम प्रिय अङ्गरूप प्रभु को हर दिन, हर दिन में भी हर प्रातः, हर सायं, फिर हर दिन हर प्रातः सायं ही क्या, हर दिन में भी हर पल, हर घड़ी, अपने अवाध वृति प्रवाह से इतना अपना अभिन्न अङ्ग वना लें, इतना अपना अभिन्न अङ्ग अनुभव करने लगें कि फिर एक क्षण के लिए भी हमें तुम्हारा वियोग खटकने लगे,कष्ट कर प्रतीत होने लगे। प्यारे प्रभुवर ! जीवन की कितनी अनुपम वे घड़ियाँ होंगी, कितनी सुखकर वे घड़ियाँ होंगी, कितनी तृप्तिकर वे घड़ियाँ होंगी, जब कि ऐसा होगा। वास्तव में जब ऐसा-होगा तब हमें प्रतिपल सर्वत्र तू ही तू भासने लगेगा, कण-कण के झरोखे में से तू झांकता हुआ दिखाई देगा, सचमुच बड़ा ही आनन्द प्रद वह समय होगा, जब तू हमारे सामने होगा और हम तुम्हारे सामने होंगे।

हे ऐसे प्यारे प्रकाश के पुन्ज परमेश्वर ! (त्वं दाशुषे यत्

भद्रं करिष्यसि) जो इस जगत् में दाश्वान् है, दानशील है, अपना तन मन और धन परोपकार में लगाता रहता है, तू उसका सब प्रकार से कल्याण करता हैं । इस से ज्ञात होता है कि जो इस जगत् में दाश्वान् है, दानो है, अपने से आयु अनुभव एवं ज्ञान आदि की दृष्टि से जो बड़े हैं, उनकी वह सेवा करता है, शुश्रूषा करता है, उनका वह मान करता है, सम्मान करता है । और जो समान हैं, मित्र हैं, सखा हैं, उनको भी वह समय पड़ने पर स्नेह देता है, सहयोग देता है, सहानुभूति देता है । तथा जो आयु, अनुभव एवं ज्ञान से छोटे हैं, अन्न धन वस्त्र आदि के अभाव से जो पीड़ित हैं, रोगी होकर औषधि और सान्त्वना के लिए जो सदा हाथ पसारे रहते हैं, स्नेह और सहानुभूति के लिए जो तरस जाते हैं, उन्हें जो सान्त्वना देता है, धन देता है, वस्त्र देता है, उनके आँसू पोंछता है, उन के दुःख दर्द और पीड़ा को जो देखता है, सुनता है, और तदनुरूप दौड़धूप कर उनके लिए दवा का प्रवन्ध आदि करता है । यहाँ तक कि अपने तन, मन और धन आदि से सब प्रकार से उन्हें सुख देता है । फिर जो यह सब कुछ करते हुए भी इस का श्रेय: तुझ पावन परमेश्वर को देता है अर्थात् अपना तन, मन और धन तेरी प्रेरणाओं पर न्योच्छावर करत है, और फिर भी यह विभोर होकर गाता है—

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ॥
तेरा तुझ को सोंपते क्या लागत है मोर ॥

नाथ ! ऐसे दाश्वान् का, ऐसे आत्मसमर्पण करने वाले का तू भद्र करता हैं, सर्वविध कल्याण करता हैं । क्योंकि(तत्

तव सत्यम् इत्) उसका वह भद्र करना-कल्याण करना तेरा सत्यनियम है, अटलनियम है, निश्चल नियम है। योगी राज श्री कृष्ण चन्द्र जी ने भी तभी तो गीता में ह्ं सान्त्वना देते हुए कहा है कि –"न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति। अर्थात्" कोई भी व्यक्ति जो कल्याण का कार्य करता है वह कभी दुर्गति को-दुर्दशा को नहीं प्राप्त होता"। हे सत्य नियमों के विधाता परम पिता परमात्मन् ! तेरे इस निश्चल विधान पर पूर्ण विश्वास करके ही तो सभी महापुरुष, सभी ज्ञानी, तपस्वी, ऋषि, मुनि सर्वत्र शुभ ही शुभ करते रहते हैं, सर्वत्र सबका भला ही भला करते रहते हैं। भले ही ऐसा करने में उन्हें कितना भी दारुण दुःख क्यों न सहन करना पड़े। हे दिव्य देव! उन्हीं ऋषि-महर्षियों की, मुनी-मुनीश्वरों की, ज्ञानी-प्रज्ञानियों कीं, पुरुष-महापुरुषों की ऐसी जीवन लीलाओं को देख-देखकर और तेरे वेदगत पावन दिव्य अटल विधि विधानों को देख-देखकर हमें भी पूर्ण विश्वास होता है कि जो दानशील होगा. जो सब का निरन्तर भला ही करता रहेगा, उसका भी निश्चित् रूप से भला ही होगा-कल्याण ही होगा। ऐसे हे प्रभुवर ! दानशील परोपकार-परायण मनुष्य को जहाँ तू इस लोक में सुख-सौभाग्य से सम्पन्न करता है, वहाँ उसका तू परलोक में भी सर्वविध कल्याण करता है। इस प्रकार वह जहाँ अभ्युदय का दिव्य भाजन बनता है वहाँ निश्रेयस मे भी वह वञ्चित नहीं रहता। वह जहाँ सांसारिक सुख-सौभाग्यों का उपयोग करता है, वहाँ उस परम पिता परमात्मा में ध्यानावस्थित होकर भीतर ही भीतर विभोर करने वाले आनन्द सरोवर में डुबकी मार-मार कर अपनी

सब प्रकार की तपश मिटाकर सब प्रकार से शान्त और तृप्त हो जाता है।

हे अंगिरः ! हे अङ्ग-अङ्ग में रमने वाले प्रभुदेव! हमें भीं वह बुद्धि दो कि तेरे इस दिव्य नियम में ढलकर अथात् अपना तन मन धन आदि सव तेरे प्रति समर्पित कर उस भद्र को पा जायें, उस कल्याण को पा जायें, उस सुख-सौभाग्य को पा जायें, उस तृप्ति और आनन्द को पा जायें कि जिसके पाने के उपरान्त फिर कुछ पाने को शेष न रह जाये। नाथ ! कव वे सौभाग्यशाली क्षण आयेंगे जवकि हम तेरे प्यार और आशीर्वाद के भाजन वनेंगे ? वेद से और भीतर से यही प्रत्युतर ध्वनित होता है कि जब हम दाश्वान् बनेंगे। सो प्रभु जी! ऐसी कृपा करो कि हम शीघ्र ही सच्चे दाश्वान्-सच्चे दानी वनकर तेरे अनुग्रह के पात्र बन सकें।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म्

विनय सं० ७ देवता–सोमः

ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहोमयि धेहि

॥ यजु० १९-९ ॥

अन्वयः [सोम !] तेजः असि, तेजः मयि धेहि। वीर्यम् असि, वीर्यम् मयि धेहि। बलम् असि, बलं मयि धेहि। ओजः असि, ओजः मयि धेहि। मन्युः असि, मन्युं मयि धेहि। सहः असि, सहः मयि धेहि।

अन्वयार्थः—हे सोम ! हे सर्व शुभगुण सम्पन्न परमेश्वर ! (तेजः असि तेजः मयि धेहि) जो तुझ में तेज है, वह तेज तुझ में भी धारण कर (वीर्यम् असि वीर्यम् मयि धेहि) जो तुझ में पराक्रम है, वह पराक्रम मुझ में भी भर (बलम् असि बलम् मयि धेहि) जो तुझ में बल है, वह बल मुझ में भी धर (ओजः असि ओज मयि धेहि) जो तुझ में ओज है, वह ओज मुझ में भी धारण कर (मन्युः असि मन्यु मयि धेहि) जो तुझ में मन्यु है वह मन्यु मुझ में भी भर (सहः असि सहः मयि धेहि) जो तुझ में सहनशीलता है वह सहनशीलता मुझ में भी धर।

हे सर्व सद्गुण निधान प्रभो ! तू तेजः स्वरूप है, तू तेजस्वी है, तुझ में तेज है। हे परमेश्वर ! जैसे अग्नि में तेज है, वैसे तुझ में तेज है, जैसे विद्युत में तेज है, वैसे तुझ में तेज है, जैसे सूर्य में तेज है, वैसे तुझमें तेज है, जैसे अस्त्रशस्त्र की धारमें तेज है, वैसे

तुझ में तेज है। प्रभुवर ! जैसे अग्नि, विद्युत् और सूर्य आदि में दीप्ति है वैसे तुझ में दीप्ति है, जैसे इन में कान्ति है वैसे तुझ में भी कान्ति है।

हे दिव्य देव ! जो तेरी शरण में आ जाता है, जो तेरी राह पर चल पड़ता है, उसे भी तू तेजस्वी बना देता है, उसमें भी तू तेज भर देता है, उसमें भी तू द्युति धर देता है, उसे भी तू चमका देता है। प्रभु देव ! इसी आशा और विश्वास पर ही तो मैं तेरी शरण में आया हूँ। अतः तू मुझ में तेज धर और मुझे तेजस्वी बना, तू मुझ में द्युति धर और मुझे द्युतिमान् बना, तू मुझ में दीप्ति धर और मुझे दीप्तिमान् बना।

हे सर्वैश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! तू वीर्यवान् है, तुझ में वीरता है, तुझ में पराक्रम है, तुझ में विक्रम है, तुझ में शक्ति है, तुझ में दृढ़ता है, इसलिए जो तेरी शरण में आ जाता है तू उसे भी वीर्य से सम्पन्न कर देता है, वीरता से भर देता है। अर्थात् उसे वीर बना देता है, पराक्रमशाली बना देता है, विक्रमशाली बना देता है, शक्तिशाली बना देता है, सुदृढ़ बना देता है। प्रभु देव ! इसी आशा और विश्वास से मैं भी तेरी शरण में आया हूँ। अतः तू मुझे भी वीर्यवान् बना, मुझ में भी वीरता भर, मुझ में भी विक्रम और पराक्रम भर और मुझ अशक्त को भी सशक्त बना, मुझ अदृढ़ को भी दृढ़ और सुदृढ़ बना।

हे सोम ! सर्वबल-सम्पन्न देव ! तू बलवान् है, तुझ में बल है, तुझ में ताकत है, तुझ में शक्ति है, तुझ में प्रचण्डता है। इसलिए जो तेरे समीप आता हैं उसे भी तू बलवान् बना देता है, सबल बना देता है, ताकतवर बना देता है, शक्तिशाली

बना देता है, सशक्त बना देता है, उग्र और प्रचण्ड बना देता है। प्रभुवर ! इसी आशा एवं विश्वास को लेकर मैं तेरी शरण में उपस्थित हुआ हूँ। अतः तू मुझ में बल भर और मुझे बलवान् बना, मुझ में शक्ति भर और मुझे शक्तिमान् बना, मुझ में ताकत भर और मुझे ताक़तवर बना, मुझे उग्र बना मुझे प्रचण्ड बना।

हे सोम प्रभो ! तू ओजस्वी है, तुझ में ओज है, तुझ में महान् प्राण बल है तुझ में दिव्य सामर्थ्य है, तुझ में दिव्य कान्ति है, तुझ में अनुपम सौन्दर्य है, तुझ में अद्वितीय पवित्रता है। इसलिए तुझ से प्रभावित हुआ-हुआ जो उपासक तेरे समीप आ जाता है, उसे भी तू ओजस्वी बना देता है, प्राणबल से सम्पन्न बना देता है, दिव्य सामर्थ्य से समर्थ बना देता है, अपनी कान्ति से कान्तिमान् कर देता है, अपने सौन्दर्य से सम्पन्न कर देता है, अपने जैसा पवित्र बना देता है, दर्शनीय बना देता है, आदरणीय बना देता है। प्रभुवर ! इस कारण से मैं भी तेरे दर पर आया हूँ। अतः तू मुझ में भी ओज भर और मुझे ओजस्वी बना, प्राण बल से मुझे सम्पन्न बना, मुझे दिव्य सामर्थ्य से समर्थ बना, मुझे कान्ति से कान्तिमान् बना, मुझ में पवित्रता भर कर मुझे दर्शनीय बना, सब प्रकार से सुन्दर बना, आदरणीय बना।

हे सब सद्गुणों के स्रोत जगदीश ! तू [1]मन्यु स्वरूप है' रुद्र स्वरूप है, अतः दुष्टों पर सदा तेरा रोष बना रहता है-क्रोध

१-मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः क्रोधकर्मणो वा ॥ निरु० १०-३-२६॥
मन्यते कान्तिकर्मा। निघ० २-६ ॥

बना रहता है और उनका सदा तू वध करता रहता है-सँहार करता रहता है। इस प्रकार उन पर विजयी होकर तू सदा कान्तिमान् बना रहता है।

प्रभुवर ! जो तेरे समीप श्रद्धा से आता है उसमें भी तू मन्यु भर देता है, दुष्टों के प्रति सदा रोष भर देता है, क्रोध भर देता है, उनका वध करने की शक्ति भर देता है, उनका सँहार करने की सार्थ्य भर देता है, उन पर विजय पाकर सोत्साह अपनी विजय पताका लहराने का उत्साह भर देता है। प्रभुदेव ! यही भावना लेकर मैं भी तेरी शरण में उपस्थित हुआ हूँ। अतः तू मुझ में भी वह अनुपम मन्यु भर, वह रुद्र रूप भर, वह दुष्टों कों रुलाने और मार भगाने वाला क्रोध भर, उत्साह भर जिससे कि मैं भी निरन्तर अपने भीतर विप्लव मचाने वाले काम क्रोध लोभ मोह अहङ्कार ईर्ष्या द्वेष आदि अपने भीतरी दोषों पर तथा अपने बाह्य शत्रुओं पर रोष प्रकट कर सकूँ, क्रोध प्रकट कर सकूँ, और उनका वध कर सकूँ वा उनकों मार सकूँ ताकि ये दोष वा शत्रु मेरी सरलता का अनुचित लाभ उठाकर मुझे अपना ठिकाना न बना लें, मुझे अपना अड्डा न बना लें। प्रभुदेव ! सदा तेरी कृपा से मुझ में वह तेज बना रहे, वह सशक्त प्राण बना रहे, बल बना रहे और ओज बना रहे तथा मन्यु बना रहे एवं ऐसी कान्ति बनी रहे कि प्रथम तो ये दोष, दुर्गुण वा दुष्ट घुसने ही न पावें और यदि किसी प्रकार जरा घुस भी जावें तो घुसते ही तुरन्त निगृहीत करके समाप्त कर दिये जायें-मृत प्रायः कर दिये जायें। प्रभुदेव ! ऐसा अनुपम मन्यु मुझ में भर, ऐसा अद्-भुत उत्साह मुझ में भर कि मैं किसी प्रकार भी इस से हार न मानूँ।

हे सोम ! हे शक्तियों के भण्डार परमेश्वर ! तू 1सहः स्वरूप है, तू सहस्वान् है, तू बलवान् है, तू सहनशील है। तुझ में सहनशलीता कूट-कूट कर भरी हुई है, इसलिए तू कठिनाईयों को सहन करने वाला है, उनका डटकर-जमकर प्रतिरोध करने वाला है, उनका साहस पूर्वक मुकाबला करने वाला है। यदि ऐसा न होता तो तू इस विशाल ब्रह्माण्ड को कैसे धारण कर सकता और कैसे इस महान् कार्य में सफल हो पाता !

प्रभुवर ! जो तेरे चरणों में आ जाता है उसमें भी तू सहः-बल [सह इति वलनाम-निघं०२-९] भर देता है, उस में भी तू सहनशीलता भर देता है, साहस भर देता है, ताकि वह जीवन में बड़ी से बड़ी कठिनाई का भी सहज स्वभाव से सामना कर सकें, बड़ी से बड़ी आपत्ति और विपत्ति का मुकाबला कर सके।

हे प्रभु देव ! इसी आशा और विश्वास पर ही तो मैंने आप की ओर पग बढ़ाया है और आपका आश्रय लिया है। अतः तू ही मुझ में सहः अर्थात् बल भर, सहनशीलता भर, साहस भर, ताकि मैं बड़ी दृढ़ता से जीवन में आई हुई हर कठिनाई का हँसते-हँसते सामना कर सकूँ, हर विपत्ति का डट कर प्रतिरोध कर सकूँ, अपने हर शत्रु को 'चाहे वह आन्तरिक हो वा बाह्य, मसल कर अपनी विजय का डंका वजा सकूँ, तथा अपनी विजय की पताका लहरा सकूँ।

---

१ सहो बलम् । सहः इति बलनाम (निघं० २-९)
सह सहनम् (दयानन्द) सहनशीलता।

हे प्रभो ! तू ऐसी कृपा कर कि मैं तेरी अनुपम छत्र-छाया में तेजस्वी होकर वीर्यवान् होकर, बलवान् होकर, ओजस्वी होकर, मन्युमान् होकर और अद्वितीय साहसी होकर जगत् में जीता हुआ हर बुराई, हर आपत्ति, हर विपत्ति का डट कर सामना कर सकूँ, डटकर प्रतिरोध कर सकूँ, और अन्त में तेरा नाम लेता-लेता, तेरा गुणगान गाता-गाता तेरा धन्यवाद करता-करता विजय का डङ्का बजा सकूँ-तथा विजय पताका लहरा सकूँ एवं उसके नीचे इस महान् क्रान्ति के बाद ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः का पाठ कर सकूँ ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म् ॥

विनय सं० ८

ओ३म् दृते दृंह मा। ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ यजु० ३६-१८ ॥

अन्वयः—दृते ! मा दृंह। ते संदृशि ज्योक् जीव्यासम्, ते संदृशि ज्योक् जीव्यासम्।

अन्यार्थः—(दृते !) हे अपने नियम में दृढ़तम परमेश्वर ! (मा दृंह) मुझे दृढ़ बना, सुदृढ़ बना, जिससे कि मैं (ते संदृशि) तेरे संदशन में, तेरी सम्यक् दृष्टि में (ज्योक् जीव्यासम्) निरन्तर जीता रहूँ (ते संदृशि ज्योक् जीव्यासम्) तेरी देख-रेख में सतत् जीता रहूँ।

दृते—हे परम सुदृढ़ भगवन्! हे चट्टान के समान सुदृढ़ रहने वाले परमेश्वर! हे बाधाओं को विदीर्ण करने वाले जगदीश्वर! (मा दृंह) तू मुझे भी दृढ़ बना, मुझे भी सुदृढ़ बना। हे प्रभो! (ते संदृशि ज्योक् जीव्यासम्) मैं चाहता हूँ कि मैं जीता रहूँ, मैं निरन्तर जीता रहूँ, में सतत् जीता रहूँ, परन्तु अब मैं तेरे संरक्षण में जीना चाहता हूँ, तेरे संदर्शन में जीना चाहता हूँ, तेरी देख-रेख में जीना चाहता हूँ, तेरी अध्यक्षता में जीना चाहता हूँ, तेरे नेतृत्व में जीना चाहता हूँ, अर्थात् मैं चाहता हूँ कि मुझे सदा यह अनुभव होता रहे कि तू मुझे देख रहा है। हे जगदीश्वर! मेरी एक-एक चेष्टा, मेरा एक-एक क्रिया-कलाप, मेरी एक-एक वृत्ति-प्रवृत्ति, मेरा एक-एक मनन-चिन्तन यह सोचकर होता रहे, यह विचार कर होता रहे कि तू मुझे देख रहा है, भली भान्ति देख रहा है, भीतर-बाहर से देख रहा है।

इसी का ही यह परिणाम होगा कि मैं समझ सकूँगा कि मेरी कोई भी ऐसी वृत्ति-प्रवृत्ति नहीं हो सकती जो कि मैं तुझ से छुपा सकूँ, कोई ऐसा क्रिया-कलाप नहीं हो सकता जो कि मैं तुझ से ओझल होकर कर सकूँ। प्रभुदेव ! वास्तव में मेरे भीतर बाहर जो कुछ भी मेरे द्वारा हो रहा है तू उस सबको हस्तामलकवत् सदा देख रहा है। तेरा यह देखना सब प्रकार से मेरे हित में है-कल्याण में है।

हे सर्व शक्तिमान् परमेश्वर ! तेरे सन्दर्शन में ही मैं निरन्तर जीता रहूँ। अर्थात् मुझे यह भली-भान्ति विदित होता रहे, कि तू सम्यक् प्रकार से मुझे देख रहा है, तू पैनी दृष्टि से मुझे निहार रहा है।

प्रभुवर ! तेरे सन्दर्शन के कारण, तेरे साक्षी होने के कारण मुझे यह भी भीतर से सदा बोध होता रहे कि तू इसलिये मेरी प्रत्येक चेष्टा को पैनी दृष्टि से देख रहा है कि तू जगत् का सम्राट् है, न्यायाधीश है और तुझ को सब के कर्मफलों की व्यवस्था करनी होती है, सबके प्रति न्याय व्यवस्था करनी होती है।

इस प्रकार तेरी कृपा से जब मुझे तेरी न्याय-व्यवस्था का बोध हो जायेगा अर्थात् मैं भली-भान्ति समझ जाऊँगा कि जैसा मैं कर्म करूंगा, वैसा ही फल पाऊँगा' तो फिर मैं तेरे वेदादेश के अनुसार तथा भीतर से तेरी प्रेरणा के अनुकूल कार्य करता हुआ सतत् सुख पूर्वक जी सकूँगा।

हे भगवन् ! मुझे सदा तू देखने वाला है, मुझे सदा तू भीतर-बाहर से जानने वाला है, यह सत्य-यह तथ्य क्षण भर के लिये-पल भर के लिए भी जब मेरी दृष्टि से ओझल हो जाता है तो

तब मेरी सूझ-बूझ खो जाती है और फिर मेरे द्वारा वह सब कुछ होता है जो नहीं होना चाहिये, वह सब कुछ सोचा जाता है जो नहीं सोचा जाना चाहिये, वह सब देखा जाता है जो नहीं देखा जाना चाहिये, उस दृष्टि से देखा जाता है जिस दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिये, वह सब कुछ सुना जाता है जो नहीं सुना जाना चाहिये, वह सब कुछ बोला जाता है जो नहीं बोला जाना चाहिये, वह सब कुछ खाया पीया जाता है जो खाया-पीया नहीं जाना चाहिये, उस पथ की ओर चला जाता है जिस पथ की ओर नहीं जाना चाहिये। तात्पर्य यह है कि मेरे द्वारा तब वह सब कुछ किया जाता है जो नहीं किया जाना चाहिये। इसलिये तो हे दृढ़तम जगदीश्वर! मैं तुझ से प्रार्थना करता हूँ, अभ्यर्थना करता हूँ, विनय करता हूँ कि तू मुझें दृढ़ बना सुदृढ़ बना, ऐसा कि फिर मैं निश्चल होकर तेरे सन्दर्शन में, तेरी साक्षी में, तेरी देख-रेख में, तेरे नेतृत्व में सुदीर्घ काल तक जी सकूँ, चिरकाल तक जी सकूँ। अर्थात् अपने जीवन की प्रत्येक वृत्ति-प्रवृत्ति यह विचारकर-कर सकूँ कि "देख रहा है मेरा नाथ, रहता है जो सदा साथ" बस यही तो प्रार्थना है हे परमेश्वर! यही तो अभ्यर्थना है हे जगदीश्वर! यही तो याचना है हे सर्वेश्वर! स्वीकार करो और मेरा सर्वविध उद्धार करो।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म्

विनय सं० ६

ओ३म् त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन् अघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ ऋ० १-६१-८ ॥

अन्वयः—सोम राजन्! त्वं अघायतः नः विश्वतः रक्ष। त्वावतः सखा न रिष्येत्।

अन्वयार्थः—(सोम राजन्) हे शान्ति के अनुपम स्रोत और संसार के अद्वितीय सम्राट् परमेश्वर! (त्वं अघायतः नः विश्वतः रक्ष) तुम पाप करना चाहने वाले से हमारी सब ओर से रक्षा करो (त्वावतः सखा न रिष्येत्) तुझ सदृश रक्षक का सखा कभी हिंसित नहीं होता, कभी पीड़ित नहीं होता।

हे सौम्य गुणों से सम्पन्न परमेश्वर! संसार के दिव्य सम्राट् जगदीश्वर! बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ सोत्साह हम तेरे द्वार पर आये हैं, तेरी शरण में आये हैं, तेरे चरणों में आये हैं, और तुझसे प्रार्थना करते हैं, तुझ से याचना करते हैं, तुझ से विनय करते हैं कि तू हमारी सब ओर से रक्षा कर। रक्षा भी उससे कर, जो पाप का सदा इच्छुक रहता हो, हृदय से सदा पाप करना चाहता हो, पाप जिसके हृदय में घर कर गया हो, पाप जिस के भीतर समा गया हो और फिर वह धीरे-धीरे उस की नस-नस में व्याप्त हो रहा हो, तथा वह अपनी पाप भावनाओं को कार्य रूप मे परिणत करने को उद्यत रहता हो। जिस को फिर न अपने धर्म का विचार हो, न अपनी कुल परम्परा का ध्यान हो और न ही अपनी गुरु परम्परा का ख्याल हो, न अपने माँ-बाप की शर्म हो, न ही समाज में अपने मान-

सम्मान का विचार हो, ऐसे निर्लज, बेशर्म, पापी जन से हे प्रभुवर ! तू हमारी सब ओर से रक्षा कर, हमारी सब प्रकार से रक्षा कर।

ऐसा पापी जन, जिस की नस-नस पाप से अभिभूत हो जाती है, ऐसा वह अति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या और द्वेष आदि में अन्धा हुआ-हुआ मानव जहाँ अपने आप को पाप के गर्त में गिरा कर अपना विनाश कर लेता है वहाँ वह अपने सम्पर्क से दूसरे को भी धूल में मिला देता है। स्वयं तो वह डुबता ही है, पर अपने साथ वाले को भी वह साथ ले डूबता है. स्वयं तो वह समाज में सब की दृष्टि में गिर जाता ही है पर साथ में दूसरे को भी घसीट लेता है, स्वयं तो वह बर्बाद होता ही है, पर दूसरे को भी वह अपने साथ बर्बाद कर देता है, तथा स्वयं तो वह अपना मुंह काला कर ही लेता है पर साथ में दूसरे को भी वह उज्जवल नहीं रहने देता, स्वयं तो वह कहीं का रहता ही नहीं, पर दूसरे को भी वह कहीं का रहने नहीं देता, इत्यादि।

ऐसे पापीजन के सहस्रों का धन लूट लेने पर भी, सहस्रों पर डाका डाल लेने पर भी उसके अपने घर में तो उजाला होता ही नहीं है पर हाँ जिसके घर में उजाला था उसका भी वह दीपक बुझा देता है। प्रभुदेव ! ऐसे पापीजन से, ऐसे ही दुराचारी जन से, ऐसे ही हिंसक जन से, ऐसे ही क्रोध में आग-बबूला हुए-हुए पापी जन से, ऐसे लोभ में अन्धे होकर विवेक शून्य धर्माधर्म भूले हुए पापी जन से, काम में पागल हुए-हुए पापीजन से, अहंकार में दूसरों को कुछ न समझने वाले पापी जन से ईर्ष्या और द्वेष से सदा जलते-भुनते हुए कुछ का कुछ

कर डालने वाले पापी जन से तू हमारी रक्षा कर, तू हमें वचा।

हे जगत् पर शाशन करने वाले, सत्पुरुषों के हृदयों में पवित्रता और आनन्द के स्रोत बहाने वाले परमेश्वर! हम क्यों आपसे प्रार्थना करते हैं? क्यों आपसे याचना करते हैं? क्यों आपसें विनय करते हैं? इसीलिए कि (त्वावतः सखा न रिष्येत्) तुझ समान रक्षक का मित्र कभी हिंसित नहीं होता, कभी पीड़ित नहीं होता।

हे सोम राजन्! जो तुझ को अपना सखा वना लेता है वा तेरा स्वयं सखा वन जाता है, तुझ सम अपने गुण-कर्म-स्वभाव वना लेता हैं, तुझ सम अपने में सत्य और न्याय आदि को धारण कर लेता है फिर वह तेरा अपना ही वन जाता है ओर तू उसका वन जाता है। तव वह न तुझ बिन कभी रह पाता है और न तू उन बिन रह पाता है। ऐसे तुझ समर्थ का सहयोग पाने पर तुझ सशक्त का संरक्षण पाने पर तुझ बलिष्ठ का वल पाने पर तुझ ज्ञानी का ज्ञान पाने पर तुझ प्यारे का प्यार पाने पर भला फिर किस की हिम्मत है जो उसकी कुछ हानि कर सके, उस को दुःखी कर सके, उस को पीड़ा पहूँचा सके, उस को सन्तप्त कर सके। फिर भला किस की क्या मजाल जो उस को अपने लक्ष्य से अपने उद्देश्य से अपनी पवित्रता से–न्याय से सत्पथ से च्युत कर सके। क्योंकि तव वह तो अपने सखा जगत् सम्राट् के संरक्षण में रहता है जिस के संरक्षण में जाने पर फिर कोई उस का कुछ बिगाड़ नहीं सकता। "जाको राँखे साईयां मार सके न कोय।"

वह भी फिर सब प्रकार से निर्भय हो जाता है निडर हो

जाता है क्योंकि उसने तो उसकी शरण ली है जो राजाओं का राजा है उसने तो उस से रक्षण-संरक्षण की प्रार्थना की है जिस से सब घबराते हैं, सब थर्राते हैं। उसने उस प्रभु से रक्षा की याचना की है, जो रक्षकों का भी रक्षक है, उसने तो उस देव से भिक्षा माँगी है जो दाताओं का भी दाता है उसने तो उसकी शरण ली है जो शरण्यों की भी शरण है।

प्रभु ! इस आशा और विश्वाश पर हम तुझसे प्रार्थना कर रहे हैं, तुझको पुकार रहे हैं, तुझको एक टक निहार रहे हैं कि तू हम पर भी अपना अनुग्रह करे।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म् ॥

विनय सं० १०

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ।। यजु० ३६. १२ ।।

अन्वयः—देवी आप अभिष्टये पीतये नः शं भवन्तु । शंयोः नः अभिस्रवन्तु ।

अन्वयार्थः-(देवीः आपः) दिव्य गुणों का भण्डार सर्वव्यापक परमेश्वर (अभिष्टये पीतये) इष्ट सुखों की पूर्ति के लिये और पूर्णानन्द के भोग के लिये (नः शं भवन्तु) हमारे लिये सुखकारी होवे । तथा (1शंयोः) जिससे रोगों का शमन होता है और भयों का निवारण होता है, ऐसे आधि-व्याधि-शामक एवं भयनिवारक सुख विशेष की हम पर सब ओर से वर्षा करे ।

हे प्यारे परमेश्वर ! जैसे हिमालय से दिव्य निर्मल जल धारायें बहती हैं और हमारे इष्ट सुखों की सिद्धि के लिए हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए जब हमारे खेतों को, हमारे उद्यानों को, हमारी वाटिकाओं को तृण अन्न आदि खाद्य-पदार्थों से तथा फल-फूलों से भर देती हैं, सब प्रकार से हरा-भरा कर देती हैं, तो तब वह दृश्य हमारे लिए महोत्सव रूप हो जाता है । इतना ही नहीं, ये धारायें हमारे वस्त्र पात्र आदि भी धो-धा कर शुद्ध-पवित्र बना देती हैं, हमारे

---

१. शंयोः—शमनंच रोगाणां यावनं च भयानाम् ।
—निरुक्त अ० ४, पा० ३ ।।

शरीरों को महला-धुला कर निर्मल बना देती हैं, हमारी देहों की तपश मिटा देती हैं। परन्तु ये ही धारायें जब हमारे पान करने के लिये अपना उदक समर्पित करती हैं तो तब हमारी यास बुझ जाती है और सब प्रकार से हम तृप्त हो जाते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं, खिल जाते हैं।

ऐसे हो हे दिव्य गुणों की खान सर्वव्यापक महान् परमात्मन्! हमें इष्ट सुखों से सम्पन्न एवं खुशहाल करने के लिए नाना प्रकार के सुख-सौभाग्यों के स्रोत तुझ से प्रवाहित होते रहते हैं जिन्हें पाकर हम बहुत सुखी होते हैं। परन्तु जिस समय हम इन सब पदार्थों का सेवन करके भी शान्त नहीं होते, तृप्त नहीं होते, आनन्दित नहीं होते, तो हम (पीतये) आध्यात्मिक रूप से तेरे दिव्य रस का अर्थात् ब्रह्म-रस का पान करने के लिये ध्यानावस्थित होते हैं तो तू तब हमें ऐसा शान्त कर देता है. ऐसा तृप्त कर देता है, ऐसा आनन्दित कर देता है कि फिर आँखें खोल कर इन तेरे प्रदान किये हुए बाह्य इष्ट पदार्थों के सुख-सौभाग्य को निहारने को भी हमारा जी नहीं करता।

हे सुख-शांति एवं आन्नद के अनुपम स्रोत! तेरा यह अद्‌भुत रस हमें सच-मुच ऐसा तृप्त कर देता है कि फिर हम सदा ही यह चाहने लगते हैं कि जिस में सब रोगों का शमन, होता है, सब अधि-व्याधियों की समाप्ति होती है, और सब भयों की निवृत्ति होती है, ऐसे उस अनुपम रस की, उस अद्वितीय सुख की, उस दिव्य आनन्द की हम पर तू सब ओर से वर्षा कर।

हे शान्ति स्वरूप सर्वव्यापक प्रभुदेव! तू इतना उदार है, इतना कृपालु है कि इधर हमारी प्रार्थना होती है और उधर

तू हम पर चहुँ ओर से वा सब ओर से स्नेह की, अद्वितीय सुख की, दिव्य आनन्द की, अपने परम प्यार और आशीर्वाद की वर्षा आरम्भ कर देता है। उस समय हमें ऐसा लगता है कि तू केवल भीतर से ही अपनी कृपा का स्रोत नहीं बहा रहा है प्रत्युत बाहर से भी पत्ते-पत्ते, डाली-डली, फूलों की पंखुड़ी-पंखुड़ी, तितिलियों के पर-पर, सर्वप्राणियों की चक्षु-चक्षु कोकिल की कू-कू, झरने की झर-झर में, सरित-सरोवरों की सर-सर और सम-सम में शर्वत्र तू ही हमें दिखाई देता है, सर्वत्र तू ही हमें सुनाई देता है, सर्वत्र तू ही हमें अनुभव में आता है, और सब ओर से अर्थात् भीतर और वाहर से तू ही अपने प्यार और आशीर्वाद की, सुख और सन्तोष की, तृप्ति और आनन्द की वर्षा करता है। उस समय सचमुच हम निहाल हो जाते हैं और तुझ में ऐसे खो जाते हैं कि फिर हमें अपने आपे का भी भान नहीं रहता, क्योंकि उस समय सब प्रकार से तू हमारा हो जाता है और हम तुम्हारे हो जाते हैं।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिरो३म्

॥ समाप्त ॥

'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन द्वारा श्रद्धापूर्वक दान देने वाले महानुभावों के सहयोग से लेखक की प्रकाशित पुस्तकें :—

क्रम सं०	नाम पुस्तक	प्र० सं०	द्वि०सं०	तृ०सं	च०सं०
१	प्रार्थना सुमन भाग-१	११००	४०००	४०००	
२	कौन चैन की नींद नहीं सो सकते और उसके उपाय	२०००	२०००	४०००	४००० पं० सं० ४०००
३	वेद सुधा भाग-१	२०००	४०००	४०००	
४	विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान् कौन ? भाग-१	२०००	४०००	४०००	
५	महान् विदुर के महान् उपदेश	२०००			
६	वेद सुधा, भाग-२	२०००	४०००	४०००	
७	विनय सुमन, भाग-१	२०००	४०००	४०००	
८	प्रार्थना प्रदीप भाग-१	२०००	४०००		
९	प्रार्थना प्रसून भाग-१	२०००	४०००	४०००	
१०	प्रार्थना सुमन भाग-२	२०००	४०००		
११	विनय सुमन भाग-२	२०००	४०००	४०००	
१२	अनन्त की ओर	२०००	४०००	४०००	४०००
१३	वैदिक पुष्पाञ्जलि भाग-१	२०००	२०००		
१४	„ „ भाग-२	२०००			
१५	„ „ भाग-३	२०००	२०००		
१६	„ „ भाग-४	२०००			
१७	वैदिक गृहस्थाश्रम (सुखी गृहस्थ)	३०००	४०००	४०००	
१८	प्रभात वन्दन	३०००	४०००		
१९	शयन विनय	४०००			
२०	वेदोपदेश, भाग-१	४०००	३०००		
२१	वैदिक रश्मियाँ, भाग-१	४०००	४०००		
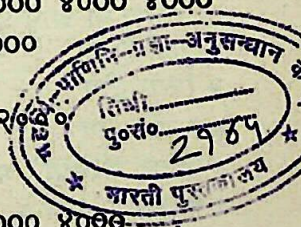
२२ विनय सुमन, भाग-३ ३००० ४०००

२३ विदुर जी की दृष्टि में
बुद्धिमान् कौन ? भाग-२ ४००० ४०००

२४ वैदिक आदर्श परिवार-भाग१ ४००० ४०००

२५ वैदिक रश्मियाँ, भाग-२ ३००० ४०००

२६ ब्रह्मयज्ञ (वैदिक सन्ध्या) ४००० ४०००

२७ वैदिक रश्मियाँ, भाग-३ ३००० ४०००

२८ पावमानो "वरदा वेदमाता" ४०००

२९ यम नियम ४००० ४०००

३० जीवन गाथा-(माता भागवन्ती जी) ४००० ३०००

३१ ईशोपनिषद् ४०००

३२ नचिकेता के तीन वर ४०००

३३ याज्ञवल्क्य मैत्रेयी सम्वाद ४००० ४०००

३४ यज्ञ सुधा ४०००

३५ पावन--धारा ४०००

आंग्ल भाषा में प्रकाशित साहित्य

१ Quest For The Infinite 2000

शीघ्र ही आगे प्रकाशित होने वाली पुस्तकें।

१ कहाँ है वह ?

२ क्रिया योग

३ अष्टांग योग

४ वैदिक रश्मियाँ, भाग -४

५ वेदोपदेश, भाग-२

६ वैदिक आदर्श परिवार भाग-२

नोट:—पुस्तक विक्रेता आदि को "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" के लिये १)रु० ७५ पै० मात्र दान देकर भी यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है।
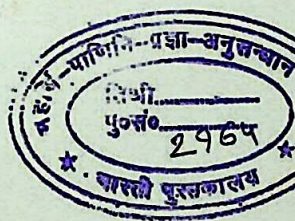
प्रो. रामप्रसाद वेदालङ्कार, वेदरत्न

आचा[illegible]

गुरुकुल कांगड़ी [illegible]

जन्म-थ:ना[illegible]

जि[illegible]

(वर्तमा[illegible]

जन्मति[illegible]

पिता का नाम-[illegible]

शिक्षा—गवर्नम[illegible]

आदर्श[illegible]

श्यामसुन्दर मेमोरियल हाईस्कूल चन्दौसी, [illegible] विद्यालय यमुनानगर (जिला अम्बाला) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार । उपाधियाँ—सिद्धान्त भूषण, सिद्धान्त शिरोमणि, (दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर), वेदालङ्कार, एम०ए० (वैदिक साहित्य) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार । प्रचार कार्य—उ० प्रदेश, दिल्ली, म०प्र०, आन्ध्र प्र०, हरियाणा पंजाब, हिमाचल प्र०, राजस्थान, महाराष्ट्र (बम्बई). गुजरात आदि । अध्यापन—दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर, गुरुकुल झज्झर (हरियाणा), गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार, प्रोफेसर, अध्यक्ष वेद विभाग, वर्तमान पद—आचार्य एवं उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार । लेखन प्रकाशन-३५ पुस्तकें एवं पत्रिकाओं में लेख आदि । सम्मान एवं पुरस्कार—आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार १९८१ से सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा संस्कृत विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर (ii) आर्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में सम्मानित एवं पुरस्कृत (१९८३) द्वारा महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह समिति अजमेर । (iii) वेदरत्न (मानद उपाधि १९८४ में द्वारा विश्व वेद परिषद्)